Cosmos Multidisciplinary Research E-Journal
Online Available at www.cmrj.in
Recognized International Peer Reviewed Journal
Impact Factor 5.3
ISSN No. 2456-1665

इक्कीसवीं सदी के हिंदी कहानी में 'दलित-विमर्श'

डॉ. वाघमारे के. एच.
हिंदी विभाग,
कालिकादेवी महाविद्यालय, शिरूर कासार
Mo.9960345194, basmath2014@gmail.com

प्रस्तावना :

इक्कीसवीं सदी प्रौद्योगिकी की सदी है। इंटरनेट के इस युग में विश्व एक गाँव बन गया है। मोवाईल ने संचार में क्रांती लायी है। देश तीव्र गति से विकास की ओर बढ़ रहा है। शिक्षा की मात्रा बढ़ रही है। उपभोगवादी प्रवृत्ति बढ़ रही है। ऐसी स्थिति में इस सदी में न दलितों की स्थिति में कोई गुणात्मक अंतर आया है न स्त्रियों की स्थिति में। यह सही है कि अब पहले जैसे खुलेआम अत्याचार नहीं होते। अत्याचार होते हैं, उनका स्वरूप बदला है। पहले दलितों के साथ प्रत्यक्ष रूप में छुआछूत बरती जाती थी, अब यह छुआछूत अदृश्य रूप में है। पहले शिक्षा के द्वार दलितों के लिए बंद थे। आज शिक्षा के द्वार खुल गए हैं, परंतु वहाँ भी दलितों को नई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। समाज की मानसिकता नहीं बदली है। प्रसिद्ध दलित साहित्यकार राम निहोर विमल कहती हैं, "आधुनिक एवं परिष्कृत रूपों में, वर्ण-व्यवस्था और छुआछूत के आधार पर, शूद्रों-अति शूद्रों को अयोग्य ठहराकर, उनके शोषण दमनवाली व्यवस्था, अब भी मौजूद है। इन बातों पर आज भी अमल होते हैं और इन्हें तोड़नेवाले उद्दण्डों को आज भी सजाएँ मिलतीं हैं। अन्य बातों की तरह ही, इन सजाओं का भी बाहरी रूप बदल गया है। अब कानों में सीस पिघलाकर नहीं डाले जाते, हाथ-पैर नहीं काटे जाते, जिह्वाएँ नहीं खींची जातीं और कोल्हू में नहीं पेरा जाता...। लेकिन इनके आतंक भय या प्रभाव पहले जैसे ही हैं। ये सजाएँ भी कानों में सीस डालना, ह्थ-पैर जिह्वा काटने और कोल्हू में पेरने जैसे ही ह्दय विदारक, भयानक, दर्दनाक और जानवेवा हैं। और हाथ पैर तोड़ना, आँखें फोड़ देना, सामूहिक रूप से हत्या करना, बलात्कार कहना व जिंदा जला देना और औरतों को नंगा करके गाँवों-गलियों-सड़कों पर घुमाना तो अब भी ज्यों के त्यों ही हैं।"[1] इसका चित्रण हमें दलित कहानी में दिखाई देता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'घुसपैठिये' शिक्षा क्षेत्र की इस प्रवृत्ति पर प्रकाश डालती है। संविधान ने आरक्षण दिया है, संविधान को अमल में लानेवाले उसे नकार रहे हैं। दलितों को नौकरियाँ मिल रही हैं, पर वहाँ भी जाति के नाम पर दलितों को अपमानित होना पड़ रहा है। महानगरों में भी तरह-तरह की समस्याओं से दलित लड़ रहे हैं। महानगर का सबसे अस्वच्छ, गंदा और अस्वच्छ, गंदा और अभावग्रस्त परिसर जो होगा वह दलितों की बस्ती ही होगी। क्योंकि नगरनिगम का ध्यान कभी उस तरफ जाता ही नहीं। अमीरों के बच्चे निजी स्कूलों में पढ़ रह हैं और आगे बढ़ रहे हैं।

वर्तमान में हिंदी दलित-चेतना के साहित्य को लेकर दो प्रकार की विचार सरणियाँ बन गयी हैं। एक वरिग का कथन है कि दलितों द्वारा रचित साहित्य ही दलित साहित्य है। इस वर्ग में 'कवंल भारती', 'ओमप्रकाश वाल्मीकी', 'जयप्रकाश कर्दम' आदि साहित्याकर प्रमुख हैं। दूसरे वर्ग का कथन हैं कि दलित पर लिखने के लिए दलित होना आवश्यक नहीं है। लेकन की प्राथमिक शर्त सामाजिक संवेदना है, न कि लेखक का जाति विशेष से संबद्ध होना। हिंदी कहानी में विवेच्य अवधि से पूर्व दलित-जीवन पर कहानियाँ अपेक्षाकृत कम आयी है। 'तारा पांचाल' की 'निक्कल' कहानी में शर्मा और गुप्ता द्वारा स्टेनों चन्दर के साथ किए व्यवहार से दलितों के प्रति तथाकथित उंची जातियों की घृणा तथा संकीर्णता लक्षित होती है। गुप्ता चंन्दर को प्रतिभाशाली मानता है, किन्तु उसकी जाति 'एस.सी' पता चलने परउसकी मीनमेख के असफल प्रयास करने लगता है, "तुम्हें तो यह ड्राफट बिलकुल ओ.के. लगता होगा...भई लगे क्यों ना...दिमाग जो नहीं है और दिमाग कोई उधार थाड़े ही मिलता है... वहा तो जन्मजात होता है।"[2] राजाराम सिंह की 'मुछों' कहानी में "उच्च जाति का नाजायज दबदबा दिखाया गया है। अस्पताल बनाने की सेक्सन हरिजनों के मूछों गांव के लिए आती है, किन्तु वह बनता है उच्च जातियों के गाँव फुलैरा में। हरिजनों के गाँव में दवा-दारू करते हुए डॉ. अशोक अस्थाना तथा अस्पताल के प्रति उनका आदर्श रवैया भ्रष्ट विधायक सहित उंची जाति के लोगों के मन में चुभने लगता है। अतः उन्हें मरवाकर हरिजनों का नाम लगा दिया जाता है।"[3]

शहरों की तुलना में गाँवों मे यह अज्ञान-अंधकार कुछ अधिक ही है। शिक्षा का प्रचार-प्रसार बढ़ रहा है। अतः इन प्रथाओं को नकारने की मानसिकता भी मगनलाल जैसे पात्रों में दिखाई देने लगी है। वह अपनी पत्नी से कहता है, "महामारी कोई मजबूरी नहीं कि गाँव में रहां, आजादी के पचास वर्षो से अधिक बीत जाने के बाद भी कुप्रथाओं और ऊँच-नीच के जंग खाये खंभों के सहारे खड़ा है मेरा गाँव।"[4] सचमुछ भारतीय गाँव आज भी अज्ञान में हैं। संस्कृति और परंपराओं के नाम पर यहाँ आज भी मनुष्य शोषित है। मगनलाल गलत परंपराओं को नकारता है। उसका यह नकार भारतीय समाज के परिवर्तन की ओर दिशा निर्देश करता है। डॉ. आंबेडकर ने अपने दलित भाइयों से कहा था- शहर की ओर चलो। उन्हें अपने दलित भाइयों की चिंता थी। गाँवों में जातिवाद इधिक है। यह वह जानते थे। इसीलिए उन्होंने दलित समाज को शहरों की ओर चलने को कहा था। शहरों मे आकर दलितों को रोजगार मिला, शिक्षा मिली। परंतु आर्थिक स्थिति के चलते उन्हें किसी न किसी झुग्गी-झोपड़ी का सहारा लेना पड़ा। ये जुग्गी-झोपड़ियाँ हमेशा दंगों की चपेट में आ जादी हैं। यहाँ हमेंशा पुलिस की दहशत होती है, गुंडो की दहशत होती है। आम आदमी अपने काम से मतलब रखता है। परंतु जब दंगे हो ही जाते हैं तो वही दंगों की चपेट में आ जाता है। मोहनदास नैमिशराय की कहानी 'घायल शहर की एक बस्ती' के हरिया के मन में यह सवाल उठता है कि, "दंगों में आखिर गरीब आदमी ही क्यूँ मरता है, अमीर क्यूँ नहीं ?।"[5] आखिर मेरठ शहर के दंगों में गरीब हरिया भी मारा जाता है। अतः नगरीय परिवेश में भी दलित के जीवन में संघर्ष है ही। दलितों का आर्थिक

शोषण तथाकथित उच्च जातियों की एक लम्बी परंपरा रही है। रामदास मिश्र की रचना 'सर्पदंश' में हलवाही में प्रधान एक खेत गोकुल को दे देता है। किन्तु गोकुल के श्रम से खेत उभरता है, तो प्रधान का मन ललचा जाता है, "तुमने मेरे खतों को ठीक से जोता बोया नहीं। मेरे साधनों का इस्तेमाल कर अपना खेत सजाया संवारा है।"[6] गोकुल भुख में उसी खेत से रात में मकई की बालियाँ लेने जाता है। प्रधान द्वारा उसे चोर कहने पर वह फसल पर अधिकार व्यक्त करता है, तो प्रधान के गुण्डे उसे मार डालते हैं। अंत संकेत देता है कि जीने के लिए दलितों को एक होकर सांपों से लड़ाई करनी ही पड़ेगी।

शिक्षित दलित की मानसिकता सकारात्मक है। उसके पूर्वजों ने सवर्णो के अत्याचार सहे हैं इसलिए वह उन सवर्णों के प्रति बदले की भआवना नहीं रखात। वह परिस्थिति को बदलना चाहता है, वह स्वयं को बदलना चाहता है। सूरजपाल चौहान की कहानी 'बदबू' की नायिका संतोष इसका सुंदर उदाहरण है। "संतोष पढ़ी-लिखीं युवती है। पिता की आर्थिक परिस्थिती अच्छी नहीं थी वरना वह आगे भी पढ़ती। परंतु उसका विवाह करा देना ही उसके पिता को ठीक लगा। उसके ससुराल में पति, सास परंपरा से चला आया सफाई का काम करते हैं। संतोष इस काम को नहीं जानती और ना ही बह उस काम को करना चाहती है। परंतु पति और सास के साथ उसे मोहल्ला कमाने जाना पड़ता है। दिन भर वह सास के साथ मैला धोती रही, भीख माँगती रही। जब घर आयी तो उसको उबकाई हो आयी। साबुन से रगड़-रगड़ कर नहाती है पर उसके शरीर की बदबू न गयी। उससे खाना तक नहीं खाय गया। उस बदबू से वह छुटकारा पाना चाहती है। यह परिणाम शिक्षा का ही है।"[7] सूरजपाल चौहान की कहानी 'बहुरूपिया' का नायक विशाल कहता है, "वाल्मीकि समाज के लोगों में जब तक बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर की शिक्षा का प्रचार-प्रसार नहीं होगा, दब तक इस समाज का कल्याण होनेवाला नहीं।"[8] दलित समाज में नकारात्मक परिवर्तन भी लक्षित होते हैं। समाज के हर घटक में इस प्रकार का नकारात्मक सोच रखनेवाले जीव मिल जाते हैं। दलित समाज भी इसके लिए अपवाद नहीं है। सूरजपाल चौहान के लेखन की एक और विशेषता है। उन्होंने जिस प्रकार उच्च वर्ण के लोगों की विकृत मानसिकता का चित्रण किया है वैसे ही दलित समाज के अंतर्विरोधो को भी उद्घाटित किया है। आजकाल दलित समाज में बहुरूपिया, नाया ब्राह्मण जन्म ले रहें है। दलित समाज में डॉ.रामसेवक जैसे बहुरूपिया महर्षि वाल्मीकि के नाम पर, दलित समाज के उत्थान के नाम पर अपना स्वार्थ साध लेता है। वह कहानी के नायक से बेबाक कहता है, "किस दुनिया में जी रहा हैं आप, आज का युग शीघ्र रूपया बनाने का युग है।....हमें समाज से क्या लेना-देना, समाज जाए भाड़ में।"[9] दूसरी ओर दलित समाज में गंगलू जैसे पढ़े-लिखें लोग जो अपने ही परिवार से, अपने ही दलित समाज से घृणा करने लगते हैं। आरक्षण के तहत मंगलू को नौकरी क्या मिली वह अपने परिवार-समाज सबसे नफरत करन लगता है। बाबा साहब का तत्वज्ञान याद दिलाने वालों को वह सुनाता हैं, "मैं तो यहाँ तक अपनी मेहनत से पहुँचा हूँ, बाबासाहब आसमान से उतरकर मुझे नौकरी देने नहीं आये, अरे कैसा बाबा, काहे का बाबा ?।"[10]

स्त्री का दुःख सर्वत्र एक जैसा होता है। भीमा की दो बीबियाँ थीं। दोनों अथक मेहनत करतीं थी। एक पुरा दिन घर संभाल लेती थी और दूसरी जूतों की दुकान चलाती थी। भीमा आराम की जिंदगी जीता और बात-बात पे दोनों बिवियों की पीटाई करता था। लेखिका कहती हैं, "तब मैंने महसूस किया कि कमाती बड़ी बीबी है, पकाती छोटी बीबी है, खाता है भीमा ! कमानेवाली को भी मार, पकानेवाली को भी मार। यो दोनों एक-दूसरे को दोषी मानती हैं लेकिन इस स्थिति के लिए वास्तव में जो दोषी है उसे ये अपना देवता मानती हैं।"[11] दलित स्त्री हो या सवर्ण, दुर्गति दोनों की एक जैसी ही है भारतीय समाज में। परंतु दुःख इस बात का है कि सवर्ण स्त्री परंपराओं को त्यागने के लिए तैयार नहीं है। वह भी शोषित है परंतु दलित स्त्री का साथ वह नहीं दे पाती। इसीलिए विमल थोरात का यह सवाल करतीं है कि, "दलितों के प्रति सवर्ण महिलाओं का दृष्टिकोण बिल्कुल वैसा ही घृणात्मक होता है, जैसा कि सरर्ण पुरूषों का। जब खेतों, बागानों, जंगलों, घरों में सवर्ण पुरूषों द्वारा दिन के उजाले में दलित-स्त्री के स्त्रीत्व का अपनमान होता है, उस पर बलात्कार होते हैं, तब क्यों नहीं सवर्ण महिलाएँ अपने पुरूषों का विरोध करके उनका बहिष्कार करतीं।"[12] परंतु यहाँ इस बात का भी हमें विचार करना होगा कि सवर्ण महिलाएँ बहिष्कार करने इतनी सक्षम कहाँ हैं ? उस स्थिति में वे इतनी ही सोचती होंगी कि इस स्थिति से मैं बच गई। दुःख तो उसे भी होता होगा।

अमर गोस्वामी की कहानी 'ढिन्नू' में यह शोषण दैहिक तथा आर्थिक- दोनों स्तरों पर व्यक्त हुआ है। उच्च जातियों द्वारा निम्न जातियों द्वारा जाति की स्त्रियों का दैहिक शोषण सामान्य बात है। इसमें जाति-प्रथा तथा तथाकथित पवित्रता का तीखा व्यंग्य मिलता है। मैजरा हरिजनों के लिए शराब के मटके रखता है। उन्हें शराब पिलाकर उनसे पैसा छिन लेता है। शराब के नशे में लब्भू अपने पुत्र को उच्च जातियों के ढोंग की पोल खोलता है, "हमने लीलों से शादी करने वास्ते जब गाँव के शाह से पैसा उधार लिया था, तो उसने पहले जुबान ले ली थी कि शादि की पहली रात उसकी होगी। फिर शार से पैसा लौटाने की जमानत देने वाले खजूरिया पुरोहित ने दूसरी रात मांग ली थी। ये पवित्रता बड़ी जाति वालों का दिखावा हैं।"[13] हरिजन औरत कुएं से पानी नहीं भर सकती, धर्म बदलकर वही औरत तथाकथित उच्च जातियों के लिए अछूत नहीं रहती। संकीर्णता, अतार्किकता आदि को यहाँ दलित संदर्भ में प्रभावशाली रूप में उभारा गया है। उच्च जाति के लोग कथित निम्न जाति की स्त्रियों को भोगकर उन्हें सजा देते आए हैं। आलमशाह खान की कहानी 'एक और सीता' में दलित समाज द्वारा क्रांति न कर पाने की विवशता में ही इस मार्ग पर बढ़ने का साहस मिलता हैं। डोम की बेटी सीती को रमिया चाहकर लाता है। वह ठाकुरों की भांति घोड़ी पर चढ़ता है। किन्तु ढाकुर का आतंक इतना है कि वह पहली रात से ही सीती को भोगना आरंभ करता है। पर उनकी जाति से घृणा भी करता है। रमिया की मौत के महीने भर बाद ठाकुर फिर उसका हाथ पकड़ लेता है। किन्तु उसके मना करने पर भी वह नहीं मानता,तो सीती गड़ासा उठा लेती है। गाँव में शोषण के विरूद्ध तथा अपने अधिकारों के प्रति चेतना फैल रही है, किन्तु अभी संगठन की कमजोरी है। गाँव में हरिजन-संघ

बना है, जो अपने खेत छीन लेने पर विचार करता है। लेकिन उँची जाति के लोग उन्हें कमजोर बनाने लगते है वे भगलू की हत्या कर डालते हैं तथा दरोगा से झूठ बेल देते हैं कि उसका संबंध हरिकर काका की भौजाई से था। इसमें शहर से आए हरिजन पार्टि के नेता के भाषण उच्चवर्ग के निम्न कोटि के कार्यों से पर्दा उठाते हैं, "जवान गृहस्थ लोग, उनके नवही छोकरे कुसुम कन्हैया बनकर खेत में उनसे रास रचाते हैं, शाम को किसी बहाने एक-दो छोकरी को रोक लेंगे और...कुछ पैसा और दो-चार सेर अनाज केलालच में हम गरिबों की बहू-बेटियों बाबू लोगों के जाल में फंस ही जाती हैं और इसका फल क्या होता है, हर हरिजन टोले में साल में दो-चार नाजायज गर्भ गिराए जाते हैं या दो-चार औरतों को उनके पति छिनाल कहकर मार-पीटकर घर से निकाल देते हैं। यही होता रहा है हम लोगों के साथ। जैसे हम हरिजनों की कोई इज्जत ही नहीं होती..।"[14]

दलित स्त्री भी पुरूष-प्रदान संस्कृति में शोषित है। पुरूष चाहे वह सवर्ण हो या दलित, स्त्रियों के साथ एक समान पेश आते हैं। एक-सा अन्याय करते हैं। सहजीवन, लिव इन रिलेशनशिप आदि नामों की आड़ में दलित पुरूष भी स्त्री का शोषण करता है, धोखा देता है। रजत रानी 'मीनू' की 'धोखा' कहानी की नायिका अपनी युवा बेटी से अपने अनुभवों के आधार पर समझाती है, "बेटा, यह व्यवस्था पुरूषों की है। यहाँ हर निर्णय पुरूषों का होता है। कब किसको छोड़ना है, कब किसको पत्नी बनाना है, कब रखैल बनाना। निर्णय स्त्री का नहीं, पुरूष का होता है।"[15] स्त्री भावुक होती है, मन से कोमल होती है। वह सपनों की दुनिया में रहती है। वह अपने सौदर्य की ही चिंता करती है। इस प्रकार का परंपरागत चित्रण नकारते हुए सुशीला टाकभौर स्त्री को सपनों की दुनिया से कठोर धरती पर उतार लाती है। वह लिखती हैं, मैं यहाँ जीवन के यथार्थ की कठोर जमीन देखनें आई हूँ। अतः इसी कठोर धरती पर खड़ी रहकर लेखिका दलित,दलित ही क्यों, संपूर्ण भारतीय स्त्री मुक्ति की कामना करते हुए कहती हैं, "अब और नहीं, सारे बंधनों को तोड़ने का दम मुझमें है। क्या मैं इनको तोड़ नहीं सकती ? मैं मुक्त हूँ...स्वच्छंद हूँ। कौन मुझे बंधनों में बांधता है रे।"[16] कई बार पुरूष स्त्री को उसकी इज्जत लूटने की धरमी देकर उसे चुप करा देता है। परंतु उषा जैसी स्त्रियाँ अन्याय-अत्याचार पर सोचने के बाद इस निष्कर्ष पर आती है कि कैसी इज्जत ? दो-चार लोगों के अत्याचार से केवल स्त्री की ही इज्जत कैसे जाती है ? उनकी क्यों नहीं जाती ? 'अजय नावरिया' अपनी कहानी 'इज्जत' में इसी बात को नायिका उषा के माध्यम से उठाता है, "इससे भला मेरी इज्जत कैसे चली गई ? इन नामरदों ने जरा भीतर तक मुझे छू लिया तो मेरी इज्जत इससे कैसे चली गई, इनकी इज्जत इसमें नहीं गई ? मैं क्यों मरूँ ?... चिल्ला-चिल्ला कर सबको बताऊँगी....इज्जत, इज्जत, थूकती हूँ ऐसी झूठी और कमजोर इज्जत पर। थू ऐसी इज्जत पर।"[17]

इस तरह से दलित जीवन पर लिखी गयी अधिकांश कहानियाँ ग्रामीण जीवन की पृष्ठभूमि पर स्थित हैं। वस्तुतः जाति-पाति की श्रृंखलाओं के बन्धन गाँवों में ही अधिक कठोर हैं। दूसरे उँच-नीच की यह भावना हिन्दू ही नहीं, मुस्लिम तथा अन्य सम्प्रदायों में भी उतनी ही गहरी जड़े जमाए हुए दिखती है।

सारांश :

इक्कीसवीं सदी की दलित कहानी ने अक उपेक्षित दूनिया को चित्रित किया है। इस कहानी का बहुत लंबा-चौड़ा इतिहास नहीं है। फिर भी इस कहानी ने समीक्षकों, पाठकों का ध्यान खींचा है। भाषा, चरित्र, उद्देश्य आदि में यह कहानी परंपरागत हिंदी कहानी से अलग होते हुए भी हिंदी साहित्य को इसने समृद्ध किया है। भारतीय दलितों का जीवन इस कहानी ने उद्घाटित किया हैछ इसलिए अस कहानी का समाजशास्त्रीय दृष्टि से भी महत्व है। दलित कहानी के माध्यम से एक से बढ़कर एक साहित्यकार की पहचान हुयी हैं। समता, स्वातंत्र्य, बंधुता इन मानवीय मूल्यों को लेकर चलने वाली यह कहानी मात्र मनोरंजन के लिए नहीं लिखी गई है। यह कहानी सोद्देश्य लिखी गई है। यह कहानी परिवर्तन की माँग करती है। यह कहानी इंसानियत का पाठ पढ़ाती है। इसलिए इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानी का महत्व स्वयं स्पष्ट होता है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. नयी सदीं की पहचान श्रेष्ठ दलित कहानियाँ, संपा. मुद्राराक्षस, लोकभारती प्रका.,इलाहाबाद सं 2004, राम निहोर का वक्तव्य पृ. 31
2. तारा पांचाल, निक्कल(कहानी), पृ.32
3. राजाराम सिंह, मूच्छों (कहानी), पृ.12
4. नया ब्राह्मण, सुरजपाल चौहान, वाणी प्रका. नई दिल्ली, प्रथम संस्क.2009, पृ. 71
5. नयी सदी की पहचान, श्रेष्ठ दलित कहानियाँ, संपा. मुद्राराक्षस, लोकभारती प्रका., इलाहाबाद, संस्क.2004, पृ. 19
6. रामदरश मिश्र, सर्पदंश(कहानी), पृ. 35
7. नया ब्राह्मण, सुरजपाल चौहान, वाणी प्रका. नई दिल्ली, 2009, पृ. 22
8. वहीं, पृ. 24
9. वहीं, पृ. 27
10. वहीं, पृ. 62
11. दलित साहित्य 2004(वार्षिकी), मनषा कहानी से पृ. 122
12. दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर, विमल थोरात, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2010, पृ.92
13. अमर गोस्वामी, ढ़िन्नु(कहानी),
14. आलम शाह खान, एक और सीता(कहानी),
15. दलित साहित्य 2005(वार्षिकी), पृ. 281
16. हंस (दिसम्बर 2009), सूरज के आसपास कहानी से, पृ. 63
17. हंस (अगस्त 2010), इज्जत(कहानी), अजय नावरिया, पृ. 98